[2022] 13 एस.सी.आर. 100

एस कुलदीप एवं अन्य

बनाम

एस प्रिथपाल सिंह एवं अन्य

(सिविल याचिका संख्या 81/2011)

(2 अगस्त 2022)

[के. एम. जोसफ एवं हृषिकेश रॉय, न्यायाधीश]

जम्मू एवं कश्मीर कृषि सुधार अधिनियम, 1972 - धारा 2(4), 2(6), 2(7) एवं 50 - कश्मीर कृषि सुधार नियम, 1973 - नियम 5 - जम्मू एवं कश्मीर कृषि सुधार (कार्यवाही निलंबन) अधिनियम, 1975 - जम्मू एवं कश्मीर कृषि सुधार अधिनियम, 1976 - पंजीकरण अधिनियम, 1977 - धारा 17 - जम्मू एवं कश्मीर संपत्ति अंतरण अधिनियम - धारा 138 - घोषणा एवं कब्जे के लिए वाद - यह वाद घोषणा एवं कब्जा प्राप्त करने के लिए उत्तरदाता-वादी द्वारा दायर किया गया था, जो 'एसएस' (जो विवादित संपत्ति का स्वामी था) का दत्तक पुत्र था - उत्तरदाता ने दावा किया कि उसे एसएस द्वारा उसके पक्ष में भूमि उपहार स्वरूप प्रदान की गई थी - उसने अपने दावे के समर्थन में दिनांक 18.12.1975 का एक समझौता पत्र प्रस्तुत किया, जो उसके तथा 'एजेके' (किरायेदार) के बीच हुआ था, जिस पर एसएस का अंगूठा निशान था, जिससे दस्तावेज का समर्थन किया गया था - उपायुक्त (डीसी) ने दिनांक 24.12.1975 को समझौते को अभिलेखित करते हुए आदेश पारित किया - अपीलकर्ताओं ने यह तर्क दिया कि भूमि उनके कब्जे में है - जिला न्यायाधीश ने वादी-उत्तरदाता के पक्ष में डिक्री पारित की, जिसका निष्कर्ष मुख्यतः समझौता पत्र पर आधारित था - वर्तमान अपीलकर्ताओं द्वारा दायर प्रथम अपील निरस्त कर दी गई - अपीलकर्ताओं द्वारा दायर एलपीए भी निरस्त कर दी गई - अपीलकर्ताओं ने सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया और यह तर्क दिया कि उक्त समझौता उत्तरदाता को कोई स्वत्व प्रदान नहीं करता तथा ऐसा दस्तावेज पंजीकरण अधिनियम, 1977 की धारा 17 के अनुसार अनिवार्य पंजीकरण का विषय है और साथ ही यह भी कि निलंबन अधिनियम,

1975 की धारा 3 के अनुसार, संबंधित प्रावधानों तथा उनके अंतर्गत सभी कार्यवाहियों का संचालन 30.03.1976 तक निलंबित रहा और अतः दिनांक 18.12.1975 का समझौता तथा समझौते के आधार पर राजस्व अभिलेखों में संशोधन के लिए उपायुक्त का दिनांक 24.12.1975 का आदेश शून्य है - अभिनिर्धारित : समझौते पर अपने समर्थन के माध्यम से एसएस का आशय व्यक्तिगत खेती का अधिकार प्रदान करना था, किन्तु इससे किसी भी प्रकार यह संकेत नहीं मिलता कि एसएस ने उत्तरदाता को स्वत्व प्रदान करने का आशय किया था - उक्त समझौते को पारिवारिक व्यवस्था नहीं माना जा सकता - इसके अतिरिक्त, समझौता तथा उसके परिणामस्वरूप उपायुक्त का आदेश राजस्व कार्यवाही में पारित किया गया था, अतः समझौता धारा 17(2)(vi) के अंतर्गत अपवाद श्रेणी में नहीं आता - अतः विधिक प्रभाव प्राप्त करने के लिए समझौते का पंजीकरण अधिनियम, 1977 के अंतर्गत पंजीकरण आवश्यक था - निलंबन अवधि के दौरान उपायुक्त के पास अपील सुनने अथवा समझौते का अनुमोदन करने का मूलभूत अधिकार क्षेत्र नहीं था - ऐसी अवैध शक्ति के प्रयोग से पारित कोई भी आदेश अथवा डिक्री विधि की दृष्टि में शून्य होगी - उत्तरदाता (वादी) के पक्ष में पारित डिक्री निरस्त की जाती है।

अपील स्वीकार करते हुए, न्यायालय ने,

अभिनिर्धारित: 1. क. क्या दिनांक 18.12.1975 का समझौता स्वत्व प्रदान करता है?

उपरोक्त मुद्दे का निर्णय करने के लिए इस न्यायालय को समझौते के आशय और उसके कार्यप्रणाली का अवलोकन करना आवश्यक है। वादी और किरायेदार के बीच हुआ समझौता, 1972 अधिनियम तथा नियमों के अंतर्गत राजस्व अभिलेखों के संशोधन की कार्यवाही में अभिलिखित किया गया था। वहाँ वादी को भूमि का स्वामी तथा उसके व्यक्तिगत रूप से खेती करने वाले व्यक्ति के रूप में स्वीकार किया गया था। एसएस ने अपने अंगूठा निशान द्वारा समझौता पत्र का समर्थन किया था। इस पर प्रतिवादियों ने तर्क दिया है कि उक्त कथन को उसी संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए, जिसमें वह किया गया था तथा जिस प्रकार लेन-देन के पक्षकारों ने उसे समझा था। वादी का कहना है कि उसके दत्तक पिता एसएस का आशय वादी को स्वत्व प्रदान करना था तथा एसएस ने समझौते का समर्थन करने से पूर्व 1972 अधिनियम के अंतर्गत "स्वामी" की परिभाषा का अवलोकन नहीं किया होगा। इस संबंध में यह अनदेखा नहीं किया जा सकता कि पक्षकारों ने उक्त लेन-देन को 1972 अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही में

संपादित किया था। अतः समझौता 1972 अधिनियम की परिधि के भीतर अस्तित्व में है और इसलिए उसे वैधानिक प्रावधानों को लागू करते हुए ही पढ़ा जाना चाहिए। [पैरा 18][116-C-E]

2. नियमों के अध्याय III के अंतर्गत संशोधन कार्यवाही में पारित समझौता डिक्री का उद्देश्य केवल राजस्व प्रविष्टियों तथा व्यक्तिगत कृषक के रूप में भूमि के कब्जे से संबंधित है। इससे एसएस की भूमि पर वादी को किसी प्रकार का वैध स्वत्व प्रदान नहीं किया जा सकता। समझौते पर अपने समर्थन के माध्यम से संभवतः एसएस का आशय व्यक्तिगत खेती का अधिकार प्रदान करना था, किन्तु इससे किसी भी प्रकार यह संकेत नहीं मिलता कि एसएस का आशय वादी को स्वत्व प्रदान करना था। उक्त भूमि बाग (ऑर्चर्ड) श्रेणी की है। ऐसी स्थिति में, समझौते का विषय रही भूमि, बाग होने के कारण, 1972 अधिनियम की धारा 2(4) के अंतर्गत "भूमि" की परिभाषा से बाहर हो जाती है। अतः ऐसी श्रेणी की भूमि का स्वत्व वादी में निहित नहीं हो सकता। इस प्रकार, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि दिनांक 18.12.1975 का समझौता वादी को कोई वैध स्वत्व प्रदान नहीं करता। [पैरा 19, 20, 21][116-G; 117-B-E]

ख. क्या उक्त समझौते का पंजीकरण आवश्यक था?

3. प्रतिवादियों द्वारा यह तर्क दिया गया कि उक्त समझौता पंजीकरण अधिनियम, 1977 की धारा 17 का अनुपालन नहीं करता, जो अनिवार्य पंजीकरण का प्रावधान करती है, तथा पंजीकृत दस्तावेज के अभाव में कोई स्वत्व, दावा या कब्जा प्रभावी नहीं हो सकता। यह समझौता पारिवारिक सदस्यों के मध्य नहीं था, बल्कि वादी और किरायेदार (जो पारिवारिक सदस्य नहीं था) के बीच था। एसएस का कथन "मैं समझौते को स्वीकार करता हूँ", केवल किरायेदारी से संबंधित आंतरिक व्यवस्था के संदर्भ में था और इससे इसे पारिवारिक व्यवस्था नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त, यह तर्क कि समझौता "पारिवारिक व्यवस्था" है, पहली बार इस न्यायालय के समक्ष उठाया गया है। वादी ने उच्च न्यायालय के समक्ष, यह कहते हुए कि वह एसएस का दत्तक पुत्र है, एसएस द्वारा छोड़ी गई अन्य संपत्तियों पर अपना दावा त्याग दिया था। अतः उसे इस न्यायालय के समक्ष पहली बार ऐसा तर्क उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। अन्यथा भी, किरायेदार पारिवारिक सदस्य नहीं था, अतः वह तथाकथित "पारिवारिक व्यवस्था" का पक्षकार नहीं हो सकता था। इसके अतिरिक्त, अन्य कोई पारिवारिक सदस्य भी

उक्त समझौते का पक्षकार नहीं था। अतः विवादित दस्तावेजों का पंजीकरण आवश्यक था और उन्हें पारिवारिक व्यवस्था नहीं माना जा सकता। [पैरा 22 और 23][117-F-H; 118-A-C]

4. उक्त समझौते का पंजीकरण पंजीकरण अधिनियम, 1977 की धारा 49 तथा जम्मू एवं कश्मीर संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 138 के अंतर्गत आवश्यक था। ऐसे पंजीकरण के अभाव में, विवादित दस्तावेजों के आधार पर वादी के पक्ष में कोई स्वत्व उत्पन्न नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त, समझौता तथा उसके परिणामस्वरूप उपायुक्त का आदेश राजस्व कार्यवाही में पारित किया गया था और यह किसी न्यायालयीय कार्यवाही का भाग नहीं था। ऐसी स्थिति में, समझौता पंजीकरण अधिनियम, 1977 (तत्कालीन जम्मू एवं कश्मीर राज्य में लागू) की धारा 17(2)(vi) के अंतर्गत अपवाद श्रेणी में नहीं आता। उपर्युक्त से यह पूर्णतः स्पष्ट है कि विधिक प्रभाव प्राप्त करने के लिए समझौते का पंजीकरण अधिनियम, 1977 के अंतर्गत पंजीकरण आवश्यक था। चूँकि स्वत्व का दावा किया गया है और वादी ने अपना संपूर्ण मामला उक्त समझौते पर आधारित किया है, अतः उसका पंजीकरण अनिवार्य था। तदनुसार, प्रश्न 'ख' का उत्तर सकारात्मक रूप से दिया जाता है। [पैरा 26, 27 और 28][119-F-H; 120-A-C]

5. उपायुक्त के पास निलंबन अवधि के दौरान अपील सुनने अथवा समझौते का अनुमोदन करने का मूलभूत अधिकार क्षेत्र नहीं था। ऐसे मामलों में, जहाँ किसी विशेष अधिनियम के अंतर्गत प्राधिकारी के पास अधिकार क्षेत्र का अभाव हो और फिर भी वह विधि के प्राधिकार के बिना शक्तियों का प्रयोग करे, तो ऐसी अवैध शक्ति के प्रयोग से पारित कोई भी आदेश अथवा डिक्री विधि की दृष्टि में शून्य होगी। प्राधिकारी के अधिकार क्षेत्र की कमी को पक्षकारों की सहमति से दूर नहीं किया जा सकता। ऐसे अयोग्य आदेश को जहाँ भी लागू करने या उस पर निर्भर करने का प्रयास किया जाए, वहाँ उसे चुनौती दी जा सकती है, चाहे वह निष्पादन कार्यवाही में हो या सहायक कार्यवाही में। तदनुसार, प्रतिवादियों के पक्ष में निर्णय देते हुए, हमारे मत में उपायुक्त का आदेश किसी विधिक प्रभाव का अधिकारी नहीं है, क्योंकि वह निलंबन अधिनियम, 1975 के प्रभावी रहने की अवधि के दौरान पारित किया गया था। यह न्यायालय पाता है कि अपंजीकृत समझौता उत्तरदाता को कोई स्वत्व प्रदान नहीं कर सकता। [पैरा 30][121-B-D]

भूप सिंह बनाम राम सिंह मेजर (1995) 5 एससीसी 709 : [1995] 3 अनुपूरक एससीआर 466; के. रघुनंदन एवं अन्य बनाम अली हुसैन सबीर एवं अन्य (2008) 13

एससीसी 102 : [2008] 8 एससीआर 657; फूल पत्ती बनाम राम सिंह (2015) 3 एससीसी 465; अयुध राज बनाम मोती (1991) 3 एससीसी 136 : [1991] 2 एससीआर 690; मोहम्मद अंसारी बनाम भारत संघ एवं अन्य (2017) 3 एससीसी 740 : [2017] 1 एससीआर 422; सिताबाई एवं अन्य बनाम रामचंद्र एआईआर 1970 343 : [1970] 2 एससीआर 1; ओम प्रकाश एवं अन्य बनाम आर. के. कालरा (1988) 4 एससीसी 705 : [1988] 1 अनुपूरक एससीआर 556; काले एवं अन्य बनाम उप निदेशक समेकन एवं अन्य (1976) 3 एससीसी 119 : [1976] 3 एससीआर 202; राम चरण दास बनाम गिरिजा नंदिनी देवी एवं अन्य एआईआर 1966 एससी 323 : [1965] 3 एससीआर 841; मातुरी पुल्लैय्या एवं अन्य बनाम मातुरी नरसिंहम एवं अन्य एआईआर 1966 एससी 1836; के. सी. कपूर बनाम श्रीमती राधिका देवी (मृत) उनके विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से एवं अन्य (1981) 4 एससीसी 487 : [1982] 1 एससीआर 907; मेहबूब साहब बनाम सैयद इस्माइल एवं अन्य (1995) 3 एससीसी 693 : [1985] 2 अनुपूरक एससीआर 537; भगवान कृष्ण गुप्ता (मृत) बनाम प्रभा गुप्ता एवं अन्य (2009) 11 एससीसी 33 : [2009] 3 एससीआर 393; गणेशी (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से एवं अन्य बनाम अशोक एवं अन्य (2011) 15 एससीसी 417 : [2011] 4 एससीआर 215; अजम्बी (मृत) विधिक प्रतिनिधि द्वारा बनाम रोशनबी एवं अन्य (2017) 11 एससीसी 544; रिपुदमन सिंह बनाम टिक्का महेश्वर चंद (2021) 7 एससीसी 446; हरियाणा राज्य औद्योगिक विकास निगम बनाम कॉर्क मैन्युफैक्चरिंग कंपनी (2007) 8 एससीसी 120 : [2007] 9 एससीआर 508 - उद्धृत।

<u>संदर्भित निर्णयजन्य विधि</u>

[1995] 3 सप्ल. एससीआर 466 पैरा 16.3 में संदर्भित

[2008] 8 एससीआर 657 पैरा 16.3 में संदर्भित

(2015) 3 एससीसी 465 पैरा 16.3 में संदर्भित

[1991] 2 एससीआर 690 पैरा 16.5 में संदर्भित

[2017] 1 एससीआर 422 पैरा 16.5 में संदर्भित

[1970] 2 एससीआर 1 पैरा 17.3 में संदर्भित

[1988] 1 सप्ल. एससीआर 556 पैरा 17.3 में संदर्भित

[1976] 3 एससीआर 202 पैरा 17.5 में संदर्भित

[1965] 3 एससीआर 841 पैरा 17.5 में संदर्भित

एआईआर 1966 एससी 1836 पैरा 17.5 में संदर्भित

[1982] 1 एससीआर 907 पैरा 17.5 में संदर्भित

[1985] 2 सप्ल. एससीआर 537 पैरा 17.5 में संदर्भित

[2009] 3 एससीआर 393 पैरा 17.5 में संदर्भित

[2011] 4 एससीआर 215 पैरा 17.5 में संदर्भित

(2017) 11 एससीसी 544 पैरा 17.5 में संदर्भित

(2021) 7 एससीसी 446 पैरा 25 में संदर्भित

[2007]9 एससीआर 508 पैरा 33 में संदर्भित

सिविल अपीलीय अधिकारिता: सिविल अपील संख्या 81/2011

जम्मू एवं कश्मीर उच्च न्यायालय (श्रीनगर) द्वारा एल.पी.ए. संख्या 174/2008 में पारित दिनांक 28.10.2009 के निर्णय एवं आदेश से।

अपीलकर्ताओं के लिए अधिवक्तागण: हुज़ैफ़ा ए. अहमदी, वरिष्ठ अधिवक्ता, सुश्री कवीता वाडिया, शाहरुख़ आलम, शरद कुमार, रोहन शर्मा, सुश्री मंतिका हरियानी, सुश्री आस्था शर्मा।

उत्तरदाताओं के लिए अधिवक्तागण: एस. एन. भट, वरिष्ठ अधिवक्ता, डी. पी. चतुर्वेदी, तरुण कुमार ठाकुर, सुश्री पार्वती भट, सुश्री अनुराधा मुत्ततकर।

न्यायालय का निर्णय निम्नलिखित द्वारा दिया गया:

हृषिकेश रॉय, न्यायाधीश

1. वर्तमान अपील दिनांक 28.10.2009 को एलपीए सं. 174/2008 में पारित के निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध है, जिसके द्वारा जम्मू एवं कश्मीर उच्च न्यायालय, श्रीनगर की खंडपीठ ने विद्वान जिला न्यायाधीश, अनंतनाग द्वारा दिनांक 31.07.2003 को उत्तरदाता-वादी के पक्ष में पारित डिक्री को यथावत रखा। यह वाद सर्वेक्षण सं. 1829 एवं 1838 में स्थित रणबीरपोरा, अनंतनाग की 11 कनाल और 15 मरला भूमि के संबंध में घोषणा एवं कब्जा प्राप्त करने के लिए दायर किया गया था। अपीलकर्ता स्वर्गीय एस. सुचा सिंह के प्राकृतिक पुत्र एवं पुत्री हैं, जबकि उत्तरदाता/वादी एस. पृथपाल सिंह ने स्वयं को सुचा सिंह का दत्तक पुत्र होने का दावा किया है।

2. वाद में वादी पृथपाल सिंह ने यह दावा किया कि उसे सुचा सिंह द्वारा उसके पक्ष में भूमि उपहार स्वरूप प्रदान की गई थी। किन्तु, यद्यपि वाद अनुसूची में अन्य संपत्तियाँ भी सम्मिलित थीं, वादी ने अपना दावा उपर्युक्त वर्णित 11 कनाल 15 मरला भूमि तक ही सीमित रखा और अपने दत्तक पिता सुचा सिंह की अन्य किसी भूमि पर दावा नहीं किया। वादपत्र में पृथपाल सिंह ने अपने तथा अब्दुल जलील खान के मध्य हुए समझौता पत्र की प्रमाणित प्रति संलग्न की और वादी का दावा मुख्यतः दिनांक 18.12.1975 के उक्त समझौता पत्र पर आधारित है। समझौते की प्रासंगिक शर्तें निम्नानुसार उद्धृत की जाती हैं :

"समझौता पक्षकार"

मान्यवर, समझौता निम्नानुसार प्रस्तुत किया जाता है :-

1. उपर्युक्त शीर्षकित मामले में पक्षकारों ने निम्नानुसार आपसी सौहार्दपूर्ण समझौता कर लिया है; कि सर्वे नं. 1829 से चार कनाल पाँच मरला तथा सर्वे नं. 1835 मिन से एक कनाल पंद्रह मरला, कुल छह कनाल भूमि, जिसमें पेड़ एवं मकान सम्मिलित हैं, जो रनबीरपोरा, तहसील अनंतनाग में स्थित है, अपीलकर्ता के स्वामित्व में रहेगी। इसके प्रतिफलस्वरूप अपीलकर्ता सर्वे नं. 1829 से तीन कनाल पंद्रह मरला तथा सर्वे नं. 1838 मिन से आठ कनाल, कुल 11 कनाल 15 मरला भूमि, जिसमें पेड़ सम्मिलित हैं, जो

ग्राम रनबीरपोरा, तहसील अनंतनाग में स्थित है, पर अपने किरायेदारी अधिकार त्याग देता है तथा उसका कब्जा उत्तरदाता को सौंप देता है, जिसे उसका स्वामी माना जाएगा तथा भविष्य में कोई विवाद शेष नहीं रहेगा।

2. पक्षकार वाद व्यय स्वयं वहन करेंगे तथा समझौते के आलोक में भूमि को राजस्व अभिलेखों में पक्षकारों के नाम दर्ज किया जाएगा।
3. यह प्रार्थना की जाती है कि समझौते को स्वीकार किया जाए तथा उल्लिखित शर्तों के अनुसार अपील का निस्तारण किया जाए, जिससे न्याय सुनिश्चित हो सके।

उत्तरदाता	पक्षकार
समझौता स्वीकार किया गया	अपीलकर्ता
पृथपाल सिंह का बायाँ अंगूठे का निशान	अब्दुल जलील
	अंगूठे का निशान
	मैं भी समझौता स्वीकार करता हूँ
	सरदार साचा सिंह पुत्र अमर सिंह
	रणबीरपुरा अनंतनाग
	उत्तरदाता के पिता
	अंगूठे का निशान।

3. जैसा कि देखा जा सकता है, सरदार सूचा सिंह ने उपर्युक्त समझौता विलेख पर “मैं भी समझौता स्वीकार करता हूँ” लिखते हुए अपना अंगूठा निशान लगाया। इसके पश्चात उप आयुक्त, अनंतनाग (संक्षेप में “डी.सी.”) ने फाइल संख्या 168/06 पर दिनांक 24.12.1975 को आदेश पारित किया, जिसमें दोनों पक्षकारों की उपस्थिति तथा उनके मध्य हुए समझौते को अभिलिखित किया गया, जिसके अंतर्गत किरायेदार अब्दुल जलील खान ने कुछ भू-खण्डों पर अपने किरायेदारी अधिकार त्याग दिए तथा पूर्व में उल्लिखित 11 कनाल 15 मरला भूमि, जिसमें उक्त भू-खण्ड पर स्थित पेड़ सम्मिलित हैं और जो ग्राम रनबीरपोरा में स्थित है, के संबंध में किरायेदार द्वारा उत्तरदाता को स्वामी स्वीकार किया गया। परिणामस्वरूप, डी.सी. द्वारा समझौते को राजस्व अभिलेखों में दर्ज करने हेतु आवश्यक निर्देश जारी किए गए तथा इस प्रकार किरायेदारी के संशोधन के संबंध में परिपत्र अधिकारी द्वारा पारित दिनांक

24.08.1974 का आदेश, दोनों पक्षकारों के मध्य हुए समझौते के आलोक में निस्तारित कर दिया गया।

4. उपर्युक्त कार्यवाहियों के दौरान ही, समानांतर रूप से, दिनांक 1.5.1972 को *जम्मू एवं कश्मीर कृषि सुधार अधिनियम, 1972* (आगे इसे "1972 का अधिनियम" कहा गया है) प्रवर्तित हुआ, जिसके अंतर्गत नए अधिकार एवं दायित्व सृजित किए गए तथा राजस्व अभिलेखों के संशोधन के उद्देश्य से सक्षम प्राधिकारी को अधिकार-क्षेत्र प्रदान किया गया। इस अधिनियम की धारा 2(6) के अंतर्गत राजस्व अभिलेखों के प्रयोजनों हेतु "*स्वामी*" शब्द की व्यापक व्याख्या की गई है, जिसमें "*अवर स्वामी*" तथा स्वत्वाधिकारी के माध्यम से दावा करने वाले व्यक्ति भी सम्मिलित किए गए हैं। इसी प्रकार, धारा 2(7) के अंतर्गत किसी व्यक्ति द्वारा "*व्यक्तिगत खेती*" में स्वामी तथा उसके दत्तक पुत्र द्वारा की गई खेती भी सम्मिलित मानी गई है।

5. 1972 के अधिनियम की धारा 50 के आधार पर, ***जम्मू एवं कश्मीर कृषि सुधार नियम, 1973*** (संक्षेप में "*1973 के नियम*") अधिसूचित किए गए। नियम 5 में प्रावधान किया गया कि खरीफ 1971 के लिए खासरा गिरदावरी रजिस्टर, समुचित सत्यापन एवं प्रमाणीकरण के उपरांत, दिनांक 1.9.1971 (कट-ऑफ तिथि) की स्थिति के अनुसार भूमि की व्यक्तिगत खेती का अभिलेख माना जाएगा। नियम 7 के अंतर्गत परिपत्र अधिकारियों को यह अपेक्षित किया गया कि वे अपने अधिकार-क्षेत्र के प्रत्येक ग्राम का भ्रमण कर खरीफ रजिस्टर गिरदावरी 1971 की प्रविष्टियों का सत्यापन, संशोधन तथा प्रमाणीकरण करें। नियम 15 में नियम 11 के अंतर्गत राजस्व प्रविष्टियाँ दर्ज करने हेतु "रिटर्न" में संशोधन करने या सूचना एकत्र करने की प्रक्रिया का प्रावधान किया गया। इससे स्पष्ट होता है कि दिनांक 1.9.1971 की कट-ऑफ तिथि के पश्चात परिपत्र अधिकारियों को भूमि राजस्व प्रविष्टियों के सत्यापन एवं संकलन की नई जिम्मेदारी प्रदान की गई तथा त्रुटि या विवाद की स्थिति में प्रविष्टियों के संशोधन की प्रक्रिया भी निर्धारित की गई।

6. उस चरण पर, विषय भूमि पर किरायेदारी अधिकार का दावा करते हुए अब्दुल जलील खान ने परिपत्र अधिकारी के समक्ष किरायेदारी के संशोधन हेतु आवेदन किया और किरायेदारी के संशोधन की शक्ति का प्रयोग करते हुए परिपत्र अधिकारी ने दिनांक 24.8.1974 को किरायेदार अब्दुल जलील खान द्वारा दायर आवेदन पर आदेश पारित किया। उक्त आदेश से आहत होकर

किरायेदार अब्दुल जलील खान ने 1972 के अधिनियम के अंतर्गत उप आयुक्त के समक्ष अपील प्रस्तुत की, किंतु इसी बीच दिनांक 25.3.1975 को *जम्मू एवं कश्मीर कृषि सुधार (कार्यवाहियों का स्थगन) अधिनियम, 1975* (आगे "*1975 का स्थगन अधिनियम*") अधिसूचित किया गया। यह स्थगन प्रारंभ में दिनांक 19.12.1975 तक प्रभावी था, जिसे बाद में बढ़ाकर 30.3.1976 तक कर दिया गया। ये तिथियाँ महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि दिनांक 18.12.1975 का समझौता उस अवधि में किया गया था, जब 1975 के स्थगन अधिनियम के कारण 1972 के अधिनियम के कुछ प्रावधान अप्रचालित थे।

7. दिनांक 1.6.1978 को नया *जम्मू एवं कश्मीर कृषि सुधार अधिनियम, 1976* (आगे "*1976 का अधिनियम*" कहा गया है) प्रवर्तित किया गया, जो दिनांक 13.07.1978 से प्रभावी हुआ और इसने 1972 के स्थगित अधिनियम का स्थान ले लिया।

8. दिनांक 24.12.1975 को कलेक्टर द्वारा पारित आदेश के अनुसार (उस अवधि के दौरान जब 1972 का अधिनियम स्थगित था) प्रविष्टियों के सत्यापन एवं संशोधन की प्रक्रिया के अंतर्गत जाँच की गई और सक्षम अधिकारी द्वारा म्यूटेशन संख्या 4133 का सत्यापन किया गया, जिसके द्वारा 11 कनाल 15 मरला भूमि, जिसमें पेड़ सम्मिलित हैं, को स्वर्गीय एस. सूचा सिंह के नाम पुनः दर्ज किया गया। अपीलकर्ता, जो भूमि स्वामी के प्राकृतिक पुत्र एवं पुत्री हैं, ने यह दावा किया कि उक्त तिथि से लेकर आज तक वे उक्त भूमि के कब्जे में हैं, यद्यपि इस मध्यावधि में उनके पिता एस. सूचा सिंह का निधन हो गया।

9. उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा सिविल वाद प्रारंभ में जम्मू एवं कश्मीर उच्च न्यायालय के समक्ष भूमि के स्वामित्व की घोषणा एवं कब्जा प्राप्त करने हेतु दायर किया गया था और वाद में दत्तक पुत्र द्वारा यह दावा किया गया कि अपीलकर्ताओं ने वाद में वर्णित भूमि से उसे बलपूर्वक बेदखल कर दिया है। उत्तरदाता ने सूचा सिंह की भूमि पर अपना दावा दिनांक 18.12.1975 के समझौते तथा उसके पश्चात उप आयुक्त द्वारा दिनांक 24.12.1975 को पारित समझौते को अभिलिखित करने वाले आदेश के आधार पर स्थापित किया। यद्यपि उत्तरदाता ने स्वयं को सूचा सिंह (अपीलकर्ताओं के पिता) का दत्तक पुत्र बताया, किन्तु सूचा सिंह की अन्य संपत्तियों के संबंध में इस आधार पर कोई समान दावा प्रस्तुत नहीं किया गया। उच्च न्यायालय के समक्ष दायर वाद वर्ष 1995 में जिला न्यायाधीश, अनंतनाग की न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया

गया, जहाँ अपीलकर्ताओं ने प्रतिवादी संख्या 1 एवं 2 के रूप में अपना लिखित बयान प्रस्तुत करते हुए, अन्य बातों के साथ यह कहा कि समझौता तथा उस पर उप आयुक्त द्वारा दिनांक 24.12.1975 को पारित आदेश अधिकार-क्षेत्र के बिना था और उससे वादी को कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता है। स्वर्गीय सूचा सिंह द्वारा निष्पादित उपहार के आधार पर किए गए त्यागे गए दावे के संबंध में, अपीलकर्ताओं/प्रतिवादियों का यह कथन था कि उक्त दस्तावेज उनके पिता द्वारा उनके जीवनकाल में ही निरस्त कर दिए गए थे और सितंबर, 1975 में निष्पादित निरस्तीकरण विलेख दिनांक 22.1.1976 को पंजीकृत किया गया था। उल्लेखनीय है कि वादी द्वारा वादपत्र में किए जाने हेतु मांगे गए संशोधनों पर बल नहीं दिया गया/उन्हें अस्वीकार कर दिया गया और वाद में राहत को दिनांक 18.12.1975 के समझौते तथा उप आयुक्त के दिनांक 24.12.1975 के आदेश के आधार पर 11 कनाल 15 मरला भूमि तक सीमित रखा गया।

10. माननीय जिला न्यायाधीश ने पक्षकारों की निम्नलिखित वंशावली तालिका का संज्ञान लिया:

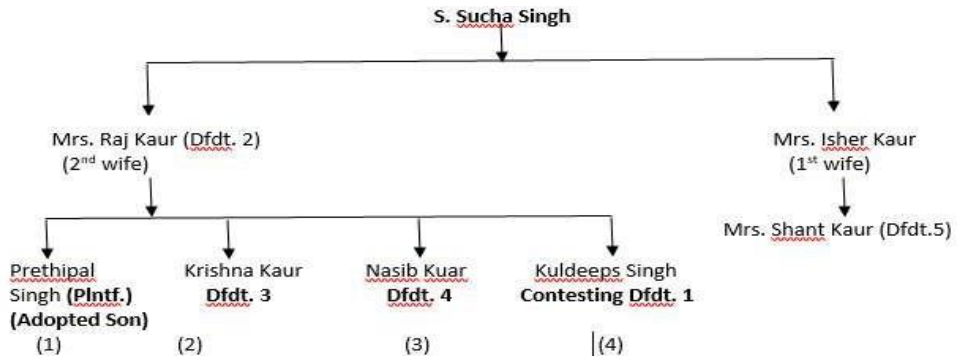

11. पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर कई मुद्दे निर्धारित करते हुए, माननीय न्यायाधीश ने अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर विचार करने के पश्चात वादी के पक्ष में यह निष्कर्ष निकाला कि वह सर्वे नं. 1829 एवं 1838 में स्थित 11 कनाल 15 मरला भूमि का स्वामी है। यह निष्कर्ष मुख्य रूप से वादी और अब्दुल जलील खान के मध्य दिनांक 18.12.1975 को हुए समझौते पर आधारित था और तदनुसार वादी-उत्तरदाता के पक्ष में तथा प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं के विरुद्ध भूमि के कब्जे के लिए डिक्री पारित की गई।

12. तत्पश्चात अपीलकर्ताओं द्वारा सिविल प्रथम अपील संख्या 117/2003 दायर की गई तथा इसी प्रकार उत्तरदाता द्वारा जिला न्यायाधीश के दिनांक 31.7.2003 के आदेश को चुनौती देते

हुए क्रॉस अपील संख्या 72/2004 दायर की गई, किन्तु माननीय एकल न्यायाधीश ने अपने दिनांक 24.9.2008 के सामान्य आदेश द्वारा दोनों अपीलों को खारिज कर दिया और इस प्रकार दिनांक 31.7.2003 की डिक्री/आदेश को बरकरार रखा गया।

13. तत्पश्चात अपीलकर्ताओं ने एल.पी.ए. संख्या 174/2008 दायर की और विशेष रूप से दिनांक 24.12.1975 के आदेश पारित करने के संबंध में उप आयुक्त के अधिकार-क्षेत्र को चुनौती दी, यह कहते हुए कि दिनांक 18.12.1975 का समझौता शून्य था। अपीलकर्ताओं के अनुसार, उनके पिता स्वर्गीय सूचा सिंह, जिनके माध्यम से वादी अपना दावा करता है, विषय भूमि के स्वामी थे और जब तक भूमि स्वामी द्वारा विधिवत पंजीकृत दस्तावेज के माध्यम से भूमि वादी के पक्ष में हस्तांतरित नहीं की जाती, तब तक वादी का विषय भूमि पर कोई दावा नहीं हो सकता। विशेष रूप से यह तर्क दिया गया कि पंजीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 49 तथा *जम्मू एवं कश्मीर संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1920 की धारा 138*, जो राज्य में लागू हैं, के अंतर्गत अचल संपत्ति के स्वामित्व अथवा कब्जे के संबंध में बिना पंजीकृत दस्तावेज के किसी दावे पर विचार नहीं किया जा सकता। उनका यह भी कहना था कि अभिलेख पर ऐसा कुछ भी उपलब्ध नहीं है जिससे यह सिद्ध हो कि सूचा सिंह ने किसी वैध दस्तावेज के माध्यम से कोई भूमि वादी को हस्तांतरित की थी। वादी के दावे के आधार बने समझौते के संबंध में अपीलकर्ताओं ने यह प्रस्तुत किया कि 1975 के स्थगन अधिनियम की धारा 3 के अनुसार 1972 के अधिनियम के संबंधित प्रावधानों का प्रवर्तन तथा उसके अंतर्गत समस्त कार्यवाहियां दिनांक 30.3.1976 तक स्थगित थीं और इसलिए दिनांक 18.12.1975 का समझौता तथा समझौते के आधार पर राजस्व अभिलेखों के संशोधन हेतु उप आयुक्त द्वारा पारित दिनांक 24.12.1975 का आदेश अस्तित्वहीन है, क्योंकि यह 1972 के अधिनियम के स्थगन के दौरान पारित किया गया था।

14. प्रतिद्वंद्वी पक्षों के तर्कों पर विचार करने के पश्चात उच्च न्यायालय ने यह अवलोकन किया कि अपील में निर्धारण हेतु केवल एक ही प्रश्न आवश्यक है, वह यह कि समझौते का क्या प्रभाव है। इसका उत्तर देने के लिए न्यायालय ने यह नोट किया कि समझौते की प्रमाणित प्रति से यह प्रकट नहीं होता कि वह भूमि की बहाली (रिज़म्पशन) हेतु प्रारंभ की गई किसी कार्यवाही से संबंधित थी, बल्कि यह राजस्व अभिलेखों के संशोधन से संबंधित थी। न्यायालय के अनुसार, वादी एक सेना कर्मी होने के कारण उस भूमि को, जो अब्दुल जलील खान की किरायेदारी में थी, पुनः प्राप्त करने की बेहतर स्थिति में था और इसलिए वादी को कार्यवाही प्रारंभ करने तथा किरायेदार अब्दुल जलील खान के साथ समझौता करने का अधिकार प्राप्त था। खंडपीठ ने यह भी नोट किया कि भूमि के स्वामी सूचा सिंह ने समझौता

विलेख को स्वीकार किया था, जिसमें सूचा सिंह की भूमि के संबंधित भागों के लिए किरायेदार अब्दुल जलील खान तथा वादी के-अपने स्वामित्व को अभिलिखित किया गया था। भूमि के अंतरण के लिए पंजीकृत दस्तावेज के अभाव के मुद्दे पर न्यायालय ने यह कहा कि ऐसा समझौता-पत्र, जिसमें कोई किरायेदार यह स्वीकार करता है कि उसके मकान-मालिक के कब्जे में कुछ भूमि है, जिस पर किरायेदार कोई दावा नहीं करता और अपनी किरायेदारी का परित्याग करता है, पंजीकरण की आवश्यकता नहीं रखता। संबंधित भूमि पर वादी के अधिकार को सूचा सिंह द्वारा अपने समर्थन/अनुमोदन के माध्यम से भी मान्यता दी गई है। इसके अतिरिक्त, चूँकि अपीलकर्ताओं ने दिनांक 18.12.1975 के समझौते को विधि द्वारा निर्धारित परिसीमा अवधि के भीतर उचित रूप से चुनौती देने के लिए कोई कदम नहीं उठाया, इसलिए वादी का अधिकार परिपक्व हो गया। तदनुसार अपील को विवादित निर्णय के अंतर्गत खारिज कर दिया गया।

15. हमने अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता श्री हुजेफा ए. अहमदी को सुना है। उत्तरदाता (वादी) की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एस.एन. भट्ट उपस्थित हुए।

16.1 स्वर्गीय सूचा सिंह द्वारा समझौता विलेख पर लगाए गए अंगूठा निशान के निहितार्थों को स्पष्ट करते हुए, माननीय वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अहमदी ने प्रस्तुत किया कि यह केवल जलील खान की किरायेदारी से संबंधित आंतरिक व्यवस्था तक सीमित था और इससे किसी भी प्रकार से वादी के पक्ष में स्वामित्व का कोई अधिकार हस्तांतरित नहीं होता। अधिवक्ता के अनुसार, "मैं समझौता स्वीकार करता हूँ" का समर्थन किसी भी प्रकार से यह संकेत नहीं देता कि सूचा सिंह ने अपनी भूमि का स्वमित्व वादी को प्रदान करने का आशय रखा था।

16.2 समझौते के विरुद्ध अपीलकर्ताओं की चुनौती पर ध्यान केंद्रित करते हुए, माननीय वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अहमदी ने प्रस्तुत किया कि समझौता राजस्व अभिलेखों के संशोधन की कार्यवाही में किया गया था और इसलिए इसे उसी संदर्भ में समझा जाना चाहिए। 1972 के अधिनियम की धारा 2(6) तथा धारा 2(7) के अंतर्गत क्रमशः "*स्वामी*" और "*व्यक्तिगत खेती*" की व्यापक परिभाषा का उल्लेख करते हुए यह तर्क दिया गया कि यह परिभाषा विस्तृत है और इसमें विधिक स्वामी के माध्यम से दावा करने वाले व्यक्तियों तथा स्वामी के "*दत्तक पुत्रों*" को भी सम्मिलित किया गया है। तदनुसार यह तर्क दिया गया कि वादी को स्वामी के रूप में स्वीकार

किया जाना यह संकेत नहीं देता कि सूचा सिंह ने अपने स्वामित्व अधिकार वादी के पक्ष में हस्तांतरित करने का आशय रखा था। परिपत्र अधिकारी की सीमित शक्तियों, जो 1.9.1971 की कट-ऑफ तिथि के अनुसार विद्यमान राजस्व अभिलेखों के संकलन और संशोधन तक सीमित थीं, को रेखांकित करते हुए यह प्रस्तुत किया गया कि नियमों के अध्याय III के अंतर्गत राजस्व संशोधन कार्यवाही में किया गया समझौता केवल राजस्व अभिलेखों तथा व्यक्तिगत कृषक के रूप में भूमि के कब्जे से संबंधित हो सकता है। अतः यह तर्क दिया गया कि समझौता वादी को अधिकार प्रदान नहीं कर सकता और न ही प्रदान करता है।

16.3 पंजीकरण अधिनियम, 1977 की धारा 17 के अंतर्गत अनिवार्य पंजीकरण की आवश्यकता को रेखांकित करते हुए आगे यह तर्क दिया गया कि समझौता विधि के अनिवार्य प्रावधानों का पालन नहीं करता है और चूँकि वादी केवल समझौते के आधार पर ही स्वामित्व का दावा करता है, अतः ऐसा दावा स्वीकार नहीं किया जा सकता था। माननीय वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत करने हेतु भूप सिंह बनाम राम सिंघ मेजर के निर्णय पर भरोसा किया कि विधि के अनुसार ऐसा समझौता आदेश, जिससे अचल संपत्ति में अधिकार, अधिकार अथवा हित सृजित होता है, का पंजीकरण आवश्यक है। के. रघुनन्दन एवं अन्य बनाम अली हुसैन साबिर एवं अन्य के निर्णय का भी अधिवक्ता द्वारा उल्लेख किया गया, जिससे यह इंगित किया गया कि न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जब वादी समझौता विलेख से अधिकार का दावा करता है, न कि पूर्व विद्यमान अधिकारों की मान्यता के आधार पर, तब ऐसे विलेख का पंजीकरण अनिवार्य रूप से आवश्यक होता है। फूल पत्ती बनाम राम सिंह के निर्णय का भी अधिवक्ता द्वारा अपने तर्क को सुदृढ़ करने हेतु उल्लेख किया गया। अपीलकर्ताओं ने यह प्रश्न उठाया कि 1972 के अधिनियम के अंतर्गत सत्यापन की प्रक्रिया के दौरान अभिलेखों में प्रविष्टि में परिवर्तन से उत्पन्न, किरायेदार जलील खान द्वारा प्रारंभ की गई कार्यवाही में हुए समझौते के आधार पर विधिक अधिकार कैसे प्राप्त किया जा सकता है। विवादित दस्तावेज किसी भी स्थिति में पंजीकरण अधिनियम की धारा 49 तथा जम्मू एवं कश्मीर संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 138 के प्रावधानों के अनुसार पंजीकृत किया जाना आवश्यक था और श्री अहमदी का यह प्रतिपादन था कि ऐसे पंजीकरण के अभाव में वादी के लिए अधिकार संबंधी अधिकार पूर्ण रूप से स्थापित नहीं होते हैं।

1 (1995) 5 एससीसी 709

2 (2008) 13 एससीसी 102

3 (2015) 3 एससीसी 465

16.4 जम्मू एवं कश्मीर राज्य में लागू पंजीकरण अधिनियम, 1977 की धारा 17(2)(vi) के प्रावधानों का उल्लेख करते हुए आगे यह तर्क दिया गया कि दिनांक 24.12.1975 का उप आयुक्त का आदेश पंजीकृत किया जाना आवश्यक था, क्योंकि समझौता किसी सक्षम न्यायालय द्वारा नहीं बल्कि राजस्व कार्यवाही के परिणामस्वरूप किया गया था। श्री अहमदी द्वारा यह भी तर्क दिया गया कि उप आयुक्त का आदेश उस समझौते पर आधारित था, जिसमें सर्वे नं. 1829 एवं 1838 का भाग बनने वाली 6 कनाल भूमि का भी उल्लेख था, जिसे किरायेदार जलील खान के पक्ष में घोषित किया गया था। यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि चूँकि वादी का वाद केवल उसके द्वारा दावा की गई 11 कनाल 15 मरला भूमि तक सीमित नहीं है, इसलिए समझौते का अनुमोदन करने वाला उप आयुक्त का आदेश, इन दोनों दस्तावेजों के आधार पर वादी के अधिकार को विधिक रूप से मान्यता प्रदान करने हेतु पंजीकरण की अपेक्षा करता है।

16.5 अपीलकर्ताओं के अनुसार, उप आयुक्त का आदेश विधिक प्रभाव से रहित है, क्योंकि यह उस अवधि के दौरान पारित किया गया था जब 1972 का अधिनियम स्थगित था और उस समय प्राधिकारी को 1972 के अधिनियम के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करने का अधिकार-क्षेत्र प्राप्त नहीं था। 1972 का अधिनियम दिनांक 25.3.1975 से 30.3.1976 तक स्थगित रहा और इसी अवधि के दौरान दिनांक 18.12.1975 के समझौते को पुनः अभिलिखित किया गया। इस प्रकार, समझौता तथा उप आयुक्त का दिनांक 24.12.1975 का आदेश ऐसे समय पर पारित किए गए, जब स्थगित अधिनियम लागू था। अतः यह तर्क दिया गया कि उप आयुक्त/कलेक्टर को अपील पर विचार करने का अधिकार-क्षेत्र एवं प्राधिकार प्राप्त नहीं था। ऐसी स्थिति में, वाद में पक्षकारों की सहमति का कोई महत्व नहीं हो सकता, क्योंकि 1972 के अधिनियम के स्थगन के कारण प्राधिकारी का अधिकार-क्षेत्र ही समाप्त हो चुका था। अपने इस प्रतिपादन के समर्थन में माननीय वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अहमदी ने अजुध राज बनाम मोती के निर्णय पर भरोसा किया:

4 (1991) 3 एससीसी 136

> *"5. किसी विशेष अधिनियम के अंतर्गत पारित प्रतिकूल आदेश के पश्चात दायर वाद में परिसीमा के प्रश्न का निर्धारण करने का सिद्धांत भली-भांति स्थापित है। यदि वाद में विवादित आदेश ऐसा है कि वादी को कोई राहत प्रदान किए जाने से पूर्व उसे निरस्त किया जाना आवश्यक है, तो अनुच्छेद 100 के प्रावधान लागू होंगे और यदि परिसीमा अधिनियम का कोई विशिष्ट अनुच्छेद लागू नहीं होता है, तो वाद अवशिष्ट अनुच्छेद 113 द्वारा शासित होगा, जिसमें तीन वर्ष की अवधि निर्धारित है। अतः किसी अचल संपत्ति के अधिकार से संबंधित वाद में, जो किसी विशेष अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही का विषय रहा हो, यदि कोई प्रतिकूल आदेश वादी की सफलता के मार्ग में बाधा बनता है, तो आगे कार्यवाही करने से पूर्व उसे निरस्त कराना आवश्यक होगा। दूसरी ओर, यदि आदेश अधिकार-क्षेत्र के बिना पारित किया गया हो, तो उसे शून्य मानते हुए, अर्थात विधि की दृष्टि में अस्तित्वहीन मानते हुए, अनदेखा किया जा सकता है और उसे निरस्त कराना आवश्यक नहीं होता; ऐसी स्थिति में ऐसा वाद अनुच्छेद 65 द्वारा आच्छादित होगा।वर्तमान मामले में विवादास्पद तथ्यों का निर्णय वादी-अपीलकर्ता के पक्ष में किया गया है और उन निष्कर्षों को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी गई। अतः स्थिति यह है कि वादी भूमि का स्वामी था और खेती योग्य कब्जे में था तथा प्रतिवादी मोती मात्र एक मजदूर था, जिसके पास किरायेदार या उप-किरायेदार का कोई अधिकार नहीं था। प्रश्न यह है कि क्या इस पृष्ठभूमि में वाद की डिक्री पारित किए जाने से पूर्व अधिनियम की धारा 27(4) के अंतर्गत उत्तरदाता के पक्ष में पारित आदेश को निरस्त करना आवश्यक है अथवा वादी उस आदेश को शून्य मानते हुए उसकी अनदेखी कर डिक्री प्राप्त कर सकता है, ऐसी स्थिति में निस्संदेह वाद अनुच्छेद 65 द्वारा शासित होगा।"*

माननीय वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे *मोहम्मद अंसारी बनाम भारतीय संघ एवं अन्य* के निर्णय पर भी भरोसा किया।

"35. इस चरण पर यह पुनः उल्लेख करना आवश्यक है कि उच्च न्यायालय के समक्ष मामला लंबित रहने के दौरान केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण ने दिनांक 5-11-2012 को अपीलकर्ता के पक्ष में अंतिम आदेश पारित किया था। तथापि, अधिकरण को पदोन्नयन अथवा अपीलकर्ता द्वारा उसके समक्ष उठाए गए वाद की प्रकृति से संबंधित मुद्दे पर विचार करने का अधिकार-क्षेत्र प्राप्त नहीं था। यदि किसी मुद्दे पर विचार करने का अंतर्निहित अधिकार-क्षेत्र ही नहीं हो, तो ऐसा निर्णय शून्य माना जाएगा। विधि में यह सुस्थापित सिद्धांत है कि यदि कोई निर्णय ऐसे न्यायालय द्वारा पारित किया गया हो, जिसे अंतर्निहित अधिकार-क्षेत्र प्राप्त न हो, तो वह निर्णय शून्य होता है। किसी डिक्री को शून्य कहे जाने का अभिप्राय यह है कि वह डिक्री पारित करने वाले न्यायालय की शक्तियों से परे (अल्ट्रा वायर्स) है और केवल निरस्तीकरण योग्य डिक्री मात्र नहीं है। (देखें हीरालाल मूलचंद दोशी बनाम बरोट रमन लाल रणछोड़दास [(1993) 2 एससीसी 458])।"

16.6 अपीलकर्ताओं ने आगे यह तर्क प्रस्तुत किया कि समझौते का विषय बाग़ान भूमि है, जो 1972 के अधिनियम की धारा 2(4) के अंतर्गत भूमि की परिभाषा से बाहर रखी गई थी और इसलिए न तो किरायेदार जलील खान और न ही वादी ऐसी बाग़ान भूमि पर किसी अधिकार का दावा कर सकते थे। अतः यह तर्क दिया गया कि 1972 का अधिनियम ऐसे किसी निजी समझौते की अनुमति नहीं देता था, जिसके आधार पर कोई समझौता किया जा सके।

16.7 प्रतिवादियों के विरुद्ध इस निष्कर्ष के संबंध में कि उन्होंने समझौते को चुनौती नहीं दी और इसलिए भूमि पर वादी के अधिकार स्थापित हो गए, यह तर्क दिया गया कि यह विधि की दृष्टि से अस्थिर स्थिति है। अपीलकर्ताओं के अनुसार, डिक्री विधिक रूप से शून्य है, क्योंकि प्राधिकारी को ऐसा कोई आदेश पारित करने का अधिकार-क्षेत्र प्राप्त नहीं था। अतः यह तर्क दिया गया कि ऐसे आदेश को सहायक कार्यवाहियों में भी निरस्त किया जा सकता है और समझौता भूमि स्वामी सूचा सिंह के अपनी भूमि पर किसी विधिसम्मत अधिकार को समाप्त नहीं कर सकता।

---

5 (2017) 3 एससीसी 740

17.1 इसके विपरीत, उत्तरदाता (वादी) की ओर से उपस्थित माननीय वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एस.एन. भट्ट ने सर्वप्रथम यह प्रस्तुत किया कि चूँकि यह अपील तीन न्यायालयों के समवर्ती निष्कर्षों से उत्पन्न हुई है, जिन्होंने वादी के पक्ष में अधिकार एवं कब्जे की घोषणा करते हुए वाद की डिक्री पारित की है, अतः इस न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए उन निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह भी प्रस्तुत किया गया कि वर्तमान मामले के तथ्यों की दृष्टि से इस न्यायालय को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। यह भी प्रस्तुत किया गया कि दत्तक पुत्र होने के नाते उत्तरदाता को केवल 11 कनाल 15 मरला भूमि ही प्राप्त होगी। (अपीलकर्ताओं का यह मामला है कि उत्तरदाता के पास अन्य संपत्तियाँ भी थीं)। इस कथन का उत्तरदाता द्वारा खंडन किया गया है।

17.2 उत्तरदाता के अनुसार, विवादित भूमि पर अधिकार की घोषणा दिनांक 18.12.1975 के समझौते तथा उस पर उप आयुक्त के अनुमोदन के आधार पर की गई है और चूँकि भूमि स्वामी सूचा सिंह ने समझौते पर अपना अंगूठा निशान लगाया था, इसलिए वादी के स्वामित्व को स्वीकार किया गया है। इस प्रकार वादी के अधिकार की न्यायालयों द्वारा विधिवत रक्षा की गई। श्री भट्ट के अनुसार, लेन-देन के पक्षकारों ने समझौते के अभिप्राय को स्पष्ट रूप से समझा था और इसलिए 1972 के अधिनियम के अंतर्गत “स्वामी” की परिभाषा की ओर संकेत करके इस मुद्दे पर कोई भ्रम उत्पन्न नहीं किया जाना चाहिए। आगे यह भी प्रस्तुत किया गया कि सूचा सिंह ने समझौते पर अपना अनुमोदन अंकित करके स्पष्ट रूप से वादी के पक्ष में विषय भूमि पर अधिकार प्रदान करने तथा उसे मान्यता देने का आशय रखा था और उसके इस कृत्य को 1972 के अधिनियम के अंतर्गत “स्वामी” की परिभाषा के आलोक में नहीं देखा जा सकता।

17.3 दिनांक 24.12.1975 के उप आयुक्त के आदेश को 1975 के स्थगन अधिनियम के प्रवर्तन के दौरान पारित होने के कारण अस्तित्वहीन और शून्य होने के मुद्दे पर उत्तरदाता ने यह तर्क दिया कि ऐसा प्रतिवाद प्रथम बार उच्च न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष एल.पी.ए. में उठाया गया था और चूँकि यह मुद्दा प्रतिवादियों द्वारा न तो विचारण न्यायालय के समक्ष और न ही प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष उठाया गया था, इसलिए खंडपीठ ने यह सही रूप से अभिनिर्धारित किया कि अपीलकर्ता ऐसा प्रतिवाद उठाने के अधिकारी नहीं हैं। आगे यह भी इंगित किया गया कि 1975 के स्थगन अधिनियम ने 1972 के अधिनियम के अंतर्गत सभी

कार्यवाहियों को पूर्णतः स्थगित नहीं किया था और स्थगन अधिनियम, 1975 की धारा 4 के अंतर्गत कुछ कार्यवाहियों को यथावत रखा गया था। अतः जब तक परिपत्र अधिकारी के समक्ष प्रारंभ की गई कार्यवाही की सटीक प्रकृति स्पष्ट रूप से प्रस्तुत नहीं की जाती, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि 1975 का स्थगन अधिनियम समझौते तथा उप आयुक्त के समक्ष चली कार्यवाही पर लागू होता है। चूँकि एल.पी.ए. की कार्यवाही में अपीलकर्ताओं को प्रथम बार ऐसा प्रतिवाद उठाने की अनुमति देने से उत्तरदाता-वादी को गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा, इसलिए माननीय वरिष्ठ अधिवक्ता श्री भट्ट ने सीताबाई एवं अन्य बनाम रामचंद्र तथा ओम प्रकाश एवं अन्य बनाम आर. के. कालरा के निर्णयों पर भरोसा किया।

17.4 वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा अपीलकर्ताओं के विरुद्ध प्रत्यवरोध (एस्टॉपल) का प्रतिवाद भी सुदृढ़ रूप से प्रस्तुत किया गया, यह इंगित करते हुए कि समझौते में सूचा सिंह द्वारा उत्तरदाता-वादी के स्वामित्व को स्वीकार किया गया था और उसी को उप आयुक्त द्वारा भी स्वीकार किया गया। ऐसी स्थिति में, सूचा सिंह के विधिक उत्तराधिकारी होने के कारण अपीलकर्ता इस प्रकार का प्रतिवाद उठाने से प्रत्यवरोधित हैं।

17.5 श्री भट्ट के अनुसार, अपीलकर्ता यह कहने में त्रुटि कर रहे हैं कि समझौते तथा उप आयुक्त के आदेश के लिए पंजीकरण आवश्यक होगा। अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि यह लेन-देन मूलतः सूचा सिंह के परिवार के भीतर का है और चूँकि वर्तमान उत्तरदाता सूचा सिंह का दत्तक पुत्र है, इसलिए इस लेन-देन को पारिवारिक लेन-देन के रूप में समझा जाना चाहिए, जो अपरिचित व्यक्तियों के मध्य होने वाले लेन-देन को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों से अपवाद होगा। अतः काले एवं अन्य बनाम सहायक समेकन निदेशक एवं अन्य, राम चरण दस बनाम गिरिजा नंदिनी देवी एवं अन्य तथा मतुरी पुल्लैयाह एवं अन्य बनाम मतुरी नरसिम्हम एवं अन्य के निर्णयों पर भरोसा करते हुए श्री भट्ट ने यह तर्क दिया कि जो वस्तुतः एक पारिवारिक व्यवस्था है, उसके लिए पंजीकरण जैसी औपचारिकताओं पर बल देने के संदर्भ में अपीलकर्ताओं के विरुद्ध प्रत्यवरोध एवं न्यायसंगतता के सिद्धांत लागू होंगे। परिवार से संबंधित लेन-देन में प्रत्यवरोध के सिद्धांतों को स्पष्ट करने हेतु श्री भट्ट ने के.सी कपूर बनाम श्रीमती राधिका देवी (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से एवं अन्य, मेहबूब साहब बनाम सैय्यद इस्माइल एवं अन्य, भगवान कृष्ण गुप्ता (मृत) बनाम प्रभा गुप्ता एवं अन्य, गनेशी (मृत) विधिक

प्रतिनिधियों के माध्यम से एवं अन्य बनाम अशोक एवं अन्य तथा जम्बी (मृत) विधिक प्रतिनिधि के माध्यम से बनाम रोशनबी एवं अन्य के निर्णयों पर भरोसा किया।

---

6 ए.आई.आर. 1970

7 (1988) 4 एससीसी 705

8 (1976) 3 एससीसी 119

9 ए.आई.आर. 1966 एससी 323

10 ए.आई.आर. 1966 एससी 1836

निष्कर्ष

क. क्या 18.12.1975 का समझौता स्वामित्व प्रदान करता है?

18. उपरोक्त मुद्दे का निर्णय करने हेतु, हमें समझौते को उसके उद्देश्य और क्रियान्वयन के परिप्रेक्ष्य में देखना होगा। वादी और अब्दुल जलील खान (किरायेदार) के मध्य समझौता 1972 के अधिनियम तथा नियमों के अंतर्गत राजस्व अभिलेखों के संशोधन की कार्यवाही में अभिलिखित किया गया था। वहाँ वादी को उस भूमि का स्वामी और कब्जाधारी स्वीकार किया गया था, जिसकी वह व्यक्तिगत रूप से खेती करता था। सूचा सिंह ने अपने अंगूठा निशान के माध्यम से समझौता विलेख का अनुमोदन किया था। इस पर प्रतिवादियों ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि उक्त कथन को उसी संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए, जिसमें इसे किया गया था तथा जिस प्रकार लेन-देन के पक्षकारों ने इसे समझा था। वादी का कहना है कि उसके दत्तक पिता सूचा सिंह का आशय वादी को अधिकार प्रदान करना था और समझौते पर अनुमोदन करने से पूर्व सूचा सिंह ने 1972 के अधिनियम के अंतर्गत "स्वामी" की परिभाषा पर विचार नहीं किया होगा। इस संदर्भ में यह अनदेखा नहीं किया जा सकता कि पक्षकारों ने यह लेन-देन 1972 के अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही में किया था। अतः यह समझौता 1972 के अधिनियम की परिधि के भीतर अस्तित्व में है और इसलिए इसे वैधानिक प्रावधानों को लागू करते हुए ही पढ़ा जाना चाहिए।

19. आगे बढ़ते हुए, 1972 के अधिनियम की धारा 2(6) एवं 2(7) के अंतर्गत क्रमशः "स्वामी" तथा "व्यक्तिगत खेती" की परिभाषाएँ व्यापक हैं। "स्वामी" की परिभाषा समावेशी है। इसमें केवल विधिक स्वामी/स्वत्वाधिकारी ही नहीं, बल्कि विधिक स्वामी के माध्यम से दावा करने वाले व्यक्ति भी सम्मिलित हैं। विशेष रूप से स्वामी के "दत्तक पुत्र" भी इसमें सम्मिलित हैं। अतः नियमों के अध्याय III के अंतर्गत संशोधन कार्यवाही में पारित समझौता आदेश का उद्देश्य केवल राजस्व प्रविष्टियों तथा व्यक्तिगत कृषक के रूप में भूमि के कब्जे से संबंधित है। इससे सूचा सिंह की भूमि पर वादी को कोई विधिसम्मत अधिकार प्रदान नहीं किया जा सकता।

20. 1973 के नियमों के अंतर्गत प्रदत्त शक्ति परिपत्र अधिकारियों को सीमित अधिकार प्रदान करती है और यह 1 सितम्बर, 1971 की कट-ऑफ तिथि के अनुसार विद्यमान राजस्व अभिलेखों के सत्यापन, संशोधन तथा प्रमाणीकरण तक सीमित है। अतः यह स्पष्ट है कि राजस्व अभिलेखों तथा व्यक्तिगत खेती के अधिकारों के संदर्भ में मात्र पुष्टि को सूचा सिंह द्वारा वादी को अधिकार प्रदान करने के आशय के रूप में व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। समझौते पर अपने अनुमोदन के माध्यम से सूचा सिंह ने संभवतः व्यक्तिगत खेती का अधिकार प्रदान करने का आशय रखा होगा, किन्तु इससे किसी भी प्रकार यह संकेत नहीं मिलता कि सूचा सिंह ने वादी को अधिकार प्रदान करने का आशय रखा था।

21. यह भी महत्वपूर्ण है कि वादी ने अपनी स्वयं की गवाही में (जो विचारण न्यायालय के समक्ष दी गई और विचारण न्यायालय के निर्णय में अभिलिखित है) यह कहा था कि सूचा सिंह ने "बाग़ान" तैयार किए थे, यद्यपि वादी के वेतन का उपयोग करके। अतः भूमि बाग़ान श्रेणी की है। ऐसी स्थिति में, समझौते का विषय होने वाली भूमि बाग़ान होने के कारण 1972 के अधिनियम की धारा 2(4) के अंतर्गत भूमि की परिभाषा से बाहर हो जाती है। इस प्रकार, ऐसी श्रेणी की भूमि का अधिकार वादी में निहित नहीं हो सकता था।

---

11 (1981) 4 एससीसी 487

12 (1995) 3 एससीसी 693

13 (2009) 11 एससीसी 33

14 (2011) 15 एससीसी 417

15 (2017) 11 एससीसी 544

अधिकार के निर्णय हेतु इस तथ्य का निर्धारण आवश्यक है और यह मुद्दा उच्च न्यायालय के समक्ष एल.पी.ए. कार्यवाही में निश्चित रूप से उठाया गया था, इसके अतिरिक्त निम्न न्यायालय के समक्ष भी उठाया गया था। ऐसी स्थिति में इस न्यायालय के लिए आवश्यक है कि वह "बाग़ान" से संबंधित पहलू को ध्यान में रखे तथा इसके विवादित पक्षकारों पर प्रभाव का भी परीक्षण करे। उपर्युक्त तथ्यों के परिणामस्वरूप हम यह निष्कर्ष निकालने के लिए प्रेरित होते हैं कि दिनांक 18.12.1975 का समझौता वादी को कोई विधिसम्मत अधिकार प्रदान नहीं करता है।

बी. क्या समझौते के लिए पंजीकरण आवश्यक था?

22. प्रतिवादियों द्वारा यह तर्क दिया गया है कि समझौता पंजीकरण अधिनियम, 1977 की धारा 17 का पालन नहीं करता, जो अनिवार्य पंजीकरण का प्रावधान करती है, और पंजीकृत दस्तावेज के बिना कोई अधिकार या दावा या कब्जा प्रभावी नहीं हो सकता। दूसरी ओर, वादी ने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि यह लेन-देन मूलतः सूचा सिंह के परिवार के भीतर का है, क्योंकि वादी सूचा सिंह का दत्तक पुत्र है। वर्तमान प्रकृति का यह लेन-देन एक भिन्न श्रेणी से संबंधित है और इस प्रकार, अपरिचित व्यक्तियों के मध्य होने वाले लेन-देन को नियंत्रित करने वाले सामान्य सिद्धांत इस श्रेणी के लेन-देन पर लागू नहीं होते।

23. तथापि, हम इस समझौते को किसी प्रकार की "पारिवारिक व्यवस्था" के रूप में देखने में असमर्थ हैं। यह समझौता परिवार के सदस्यों के मध्य नहीं, बल्कि वादी और किरायेदार जलील खान (जो परिवार का सदस्य नहीं था) के बीच किया गया था। सूचा सिंह का यह कथन "मैं समझौता स्वीकार करता हूँ" केवल जलील खान की किरायेदारी से संबंधित आंतरिक व्यवस्था के संदर्भ में है और इससे इसे पारिवारिक व्यवस्था नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त, यह प्रतिवाद कि समझौता एक "पारिवारिक व्यवस्था" है, प्रथम बार इस न्यायालय के समक्ष उठाया गया है। वादी ने उच्च न्यायालय के समक्ष यह कहते हुए कि वह सूचा सिंह का दत्तक पुत्र है, सूचा सिंह द्वारा छोड़ी गई अन्य संपत्तियों पर अपना दावा महत्वपूर्ण रूप से त्याग दिया था। अतः उसे इस न्यायालय के समक्ष प्रथम बार ऐसा प्रतिवाद उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। यह भी उल्लेखनीय है कि जलील खान परिवार का सदस्य नहीं था और इस प्रकार वह किसी तथाकथित "पारिवारिक व्यवस्था" का

पक्षकार नहीं हो सकता था। इसके अतिरिक्त, परिवार के अन्य कोई भी सदस्य उक्त समझौते के पक्षकार नहीं थे। अतः विचाराधीन दस्तावेजों के लिए पंजीकरण आवश्यक है और इसे पारिवारिक व्यवस्था के रूप में नहीं माना जा सकता।

24. यह उल्लेखनीय है कि वादी के अधिकार का दावा केवल समझौते पर आधारित है और उत्तरदाता किसी पूर्ववर्ती अधिकार का दावा नहीं कर रहा है। यह प्रश्न कि वाद कार्यवाही में पक्षकारों के मध्य हुआ समझौता डिक्री क्या उनमें से किसी एक को अधिकार प्रदान या अंतरण कर सकती है, का निर्णय भूप सिंह बनाम राम सिंह मेजर [उपर्युक्त] में किया गया था, जहाँ ऐसे समझौता आदेश, जिससे नए अधिकार या हित सृजित होते हैं, के पंजीकरण की आवश्यकता को निम्न प्रकार से स्वीकार किया गया: -

"18. उपर्युक्त विचार-विमर्श के आधार पर खंड (vi) के संबंध में विधिक स्थिति का निम्न प्रकार से सारांश प्रस्तुत किया जा सकता है:"

(1) यदि समझौता डिक्री सद्भावनापूर्वक हो, इस अर्थ में कि समझौता स्टाम्प शुल्क के भुगतान से बचने तथा पंजीकरण से संबंधित विधि को निष्प्रभावी करने का माध्यम न हो, तो इसके लिए पंजीकरण आवश्यक नहीं होगा। विपरीत स्थिति में, इसके लिए पंजीकरण आवश्यक होगा।

(2) यदि समझौता डिक्री किसी वाद के किसी पक्षकार के पक्ष में पहली बार 100 रुपये या उससे अधिक मूल्य की अचल संपत्ति में अधिकार या हित सृजित करती है, तो ऐसी डिक्री या आदेश के लिए पंजीकरण आवश्यक होगा।

(3) यदि डिक्री पंजीकरण अधिनियम की धारा 17 की उपधारा (1) के किसी भी खंड को आकर्षित नहीं करती, जैसा कि उपर्युक्त प्रिवी काउंसिल तथा इस न्यायालय के मामलों में स्थिति थी, तो यह स्पष्ट है कि ऐसी डिक्री के लिए पंजीकरण आवश्यक नहीं होगा।

(4) यदि डिक्री में समझौते की शर्तें समाहित न हों, जैसा कि लाहौर मामले में स्थिति थी, तो समझौते के आधार पर वाद का निस्तारण हो जाने पर भी समझौते की शर्तों से कोई लाभ प्राप्त नहीं किया जा सकता।

(5) यदि डिक्री द्वारा निपटाई गई संपत्ति "वाद या कार्यवाही का विषय-वस्तु" न हो, तो उपधारा (2) के खंड (vi) का प्रावधान लागू नहीं होगा, क्योंकि इस खंड में अधिनियम 21, 1929 द्वारा संशोधन किया गया था, जिसका आधार उपर्युक्त प्रिवी काउंसिल का निर्णय था, जिसके अनुसार मूल खंड उस स्थिति में भी लागू हो सकता था, भले ही उसमें ऐसी संपत्ति सम्मिलित हो जो वादग्रस्त न हो।"

25. आगे, के. रघुनन्दन एवं अन्य बनाम अली हुसैन साबिर एवं अन्य [उपर्युक्त] में, भूप सिंह [उपर्युक्त] का उल्लेख करते हुए न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि सहमति शर्तें, जो पहली बार अधिकार या हित सृजित करती हैं, और जो केवल किसी पूर्व विद्यमान अधिकार की मान्यता से भिन्न हैं, यदि संपत्ति का मूल्य 100 रुपये से अधिक हो, तो उनका पंजीकरण आवश्यक होगा। इस सिद्धांत की पुष्टि फूल पत्ती बनाम राम सिंह [उपर्युक्त] में तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा की गई। अंततः, रिपुदमन सिंह बनाम टिक्का महेश्वर चंद में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि जहाँ कोई पूर्व विद्यमान अधिकार नहीं होता और केवल समझौते द्वारा ही अधिकार सृजित किया जाता है, तो ऐसा समझौता, जो 100 रुपये या उससे अधिक मूल्य की अचल संपत्ति में नया अधिकार या हित सृजित करता है, अनिवार्य रूप से पंजीकरण योग्य होता है।

26. वर्तमान मामले में, किरायेदार जलील खान द्वारा दायर अपील 1972 के अधिनियम के अंतर्गत सत्यापन की प्रक्रिया के दौरान अभिलेखों में प्रविष्टि में परिवर्तन से उत्पन्न हुई थी। इसी अपील में समझौता अभिलिखित किया गया तथा उप आयुक्त के आदेश द्वारा उसका अनुमोदन किया गया, जिसमें पहली बार वादी के कब्जे को स्वीकार किया गया, जैसा कि वादी द्वारा वाद के अनुच्छेद 6 में भी स्वीकार किया गया है। ऐसी परिस्थितियों में, हम पूर्णतः आश्वस्त हैं कि समझौते का पंजीकरण पंजीकरण अधिनियम, 1977 की धारा 49 तथा जम्मू एवं कश्मीर संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 138 के अंतर्गत आवश्यक था। ऐसे पंजीकरण के अभाव में विचाराधीन दस्तावेजों के आधार पर वादी के पक्ष में कोई अधिकार स्थापित नहीं हो सकता।

---

16 (2021) 7 एससीसी 446

27. इसके अतिरिक्त, समझौता तथा उसके परिणामस्वरूप उप आयुक्त द्वारा पारित आदेश राजस्व कार्यवाही में पारित किया गया था और यह किसी न्यायालयीन कार्यवाही का हिस्सा नहीं था। ऐसी स्थिति में, यह समझौता पंजीकरण अधिनियम, 1977 की धारा 17(2)(vi) (तत्कालीन जम्मू एवं कश्मीर राज्य में लागू) के अंतर्गत अपवाद की श्रेणी में नहीं आता। उपर्युक्त से यह पूर्णतः स्पष्ट है कि विधिक प्रभाव प्राप्त करने के लिए समझौते का पंजीकरण पंजीकरण अधिनियम, 1977 के अंतर्गत आवश्यक था।28. महत्वपूर्ण रूप से, समझौते के आधार पर दिनांक 24.12.1975 को पारित उप आयुक्त का आदेश 6 कनाल भूमि से भी संबंधित था, जो सर्वे नं. 1829 एवं 1838 का भाग थी और जो किरायेदार जलील खान के स्वामित्व में गई। विचाराधीन समझौता अथवा उप आयुक्त का आदेश केवल वादी द्वारा दावा की गई 11 कनाल 15 मरला भूमि तक सीमित नहीं था। ये परिस्थितियाँ इंगित करती हैं कि किसी भी विधिक प्रभाव के लिए समझौते का पंजीकरण आवश्यक था। चूँकि अधिकार का दावा किया गया है और वादी ने अपना संपूर्ण मामला समझौते पर आधारित किया है, इसलिए इसका पंजीकरण अनिवार्य रूप से आवश्यक था। अतः प्रश्न 'बी' का उत्तर सकारात्मक रूप से दिया जाता है।

29. प्रतिवादियों द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष यह तर्क भी असफलतापूर्वक प्रस्तुत किया गया था कि समझौता डिक्री पारित किए जाने की तिथि पर जम्मू एवं कश्मीर कृषि सुधार अधिनियम, 1972 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करने का उप आयुक्त का अधिकार-क्षेत्र स्थगित हो गया था। विधि का ऐसा प्रश्न इस वाद पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है और इसका परीक्षण किया जाना आवश्यक है। जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया गया है, 1972 का अधिनियम दिनांक 25.03.1975 से 30.03.1976 तक स्थगित रहा और इसी अवधि के दौरान दिनांक 18.12.1975 को समझौता अभिलिखित किया गया तथा दिनांक 24.12.1975 को उप आयुक्त द्वारा आदेश पारित किया गया। इन आदेशों के लिए प्रयुक्त शक्तियाँ अधिनियम के स्थगित प्रावधानों से संबंधित हैं। निस्संदेह, जम्मू एवं कश्मीर कृषि सुधार (कार्यवाहियों का स्थगन) अधिनियम, 1975 में एक उपबंध था, जिसके अंतर्गत 1972 के अधिनियम की कुछ धाराओं के लिए अपवाद निर्मित किए गए थे। उपबंध का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है;

"4. अधिनियम संख्या XXCI के कुछ प्रावधानों का अस्थायी रूप से स्थगन नहीं - (1) मुख्य अधिनियम की धाराओं 15, 25, 26, 27, 28 और 51 के प्रावधान तथा अध्याय V के वे प्रावधान, जो इन धाराओं से संबंधित हैं, तथा उनके अंतर्गत बनाए गए किसी भी नियम, अधिसूचनाएँ, आदेश और निर्देश, जिनमें उक्त प्रावधानों के अंतर्गत प्रारंभ की गई कोई भी कार्यवाही या की गई कार्रवाई, जो इस अधिनियम के प्रवर्तन की तिथि पर लंबित हो, पूर्ववत जारी रखी जाएँगी और प्रवर्तित की जाएँगी: …"

30. उपर्युक्त से यह स्पष्ट होता है कि यह मामला 1972 के अधिनियम की उन अपवादित धाराओं के दायरे में नहीं आता, जैसे धारा 15 (भूमि के अंतरण पर प्रतिबंध), धारा 25 (वार्षिक कर का अधिरोपण), धारा 27 (कर की वसूली), धारा 28 (कर अधिरोपण से संबंधित निर्धारण) तथा धारा 51 (निरसन एवं बचाव)। केवल अध्याय V के वे प्रावधान, जो उपर्युक्त धाराओं से संबंधित थे, ही प्रासंगिक थे और सभी धाराएँ अपवाद के दायरे में नहीं थीं। 1972 के अधिनियम की धारा 31, जो अपील एवं पुनरीक्षण का प्रावधान करती है, को 1975 के स्थगन अधिनियम की धारा 4 द्वारा संरक्षित नहीं किया गया था। अतः हमारे विचार में, स्थगन अवधि के दौरान उप आयुक्त को न तो अपील पर विचार करने और न ही समझौते का अनुमोदन करने का अंतर्निहित अधिकार-क्षेत्र प्राप्त था। ऐसे मामलों में, जहाँ किसी विशेष अधिनियम के अंतर्गत प्राधिकारी को अधिकार-क्षेत्र प्राप्त नहीं होता, फिर भी वह विधि के प्राधिकार के बिना शक्तियों का प्रयोग करता है, तो ऐसे अवैध शक्ति-प्रयोग के माध्यम से पारित कोई भी आदेश या डिक्री विधिक रूप से शून्य होगी। प्राधिकारी के अधिकार-क्षेत्र की कमी को पक्षकारों की सहमति द्वारा दूर नहीं किया जा सकता। ऐसे अयोग्य आदेश को जहाँ कहीं भी लागू किया जाना हो या उस पर निर्भर किया जाना हो, वहाँ उसके विरुद्ध चुनौती प्रस्तुत की जा सकती है, चाहे वह निष्पादन कार्यवाही में हो या सहायक कार्यवाहियों में। अतः प्रतिवादियों के पक्ष में निर्णय देते हुए, हमारे मत में उप आयुक्त का आदेश किसी भी विधिक प्रभाव का नहीं हो सकता, क्योंकि वह 1975 के स्थगन अधिनियम के प्रवर्तन के दौरान पारित किया गया था। हमने यह भी पाया है कि अपंजीकृत होने के कारण समझौता उत्तरदाता को कोई अधिकार प्रदान नहीं कर सकता।

31. हमारे विचारार्थ अंतिम मुद्दा यह है कि क्या उप आयुक्त के आदेश को चुनौती देने के संदर्भ में प्रतिवादियों के विरुद्ध प्रत्यवरोध (एस्टॉपल) का सिद्धांत लागू होगा। जैसा कि विदित है, न्यायसंगतता (इक्विटी) विधि का अनुसरण करती है और जहाँ विधि एवं इक्विटी के बीच

टकराव हो, वहाँ विधि का ही वर्चस्व होता है। यहाँ लैटिन सूक्ति “dura lex sed lex”, जिसका अर्थ है “विधि कठोर है, किंतु वही विधि है”, लागू होगी। इक्विटी केवल विधि की पूरक हो सकती है, उसे प्रतिस्थापित या अधिरोहित नहीं कर सकती, और इसका प्रभाव उत्तरदाता के विरुद्ध पड़ेगा।

32. अभिलेखों से यह प्रदर्शित होता है कि सूचा सिंह ने अपने जीवनकाल के दौरान वादी के पक्ष में निष्पादित दो वसीयतों को निरस्त कर दिया था। इससे यह संकेत मिलता है कि सूचा सिंह अपनी किसी भी संपत्ति का कोई भाग वादी को देने के इच्छुक नहीं थे। इसके अतिरिक्त, वाद संपत्ति सूचा सिंह की स्व-अर्जित संपत्ति है और किसी दाता द्वारा अपनी स्व-अर्जित संपत्ति के निपटान के संबंध में कोई उपहारग्राही इक्विटी का दावा नहीं कर सकता। इक्विटी प्रतिस्पर्धी हितों के संतुलन से संबंधित है और इस तथ्य को समुचित महत्व दिया जाना चाहिए कि अपीलकर्ता चार दशकों से अधिक समय से कब्जे में हैं और अपने पिता की भूमि की देखभाल करते रहे हैं, तथा उत्तरदाता द्वारा उनके विरुद्ध प्रतिपादित प्रत्यवरोध का सिद्धांत विधि द्वारा निर्धारित प्रावधानों के अधीन होना चाहिए।

33. उनके विरुद्ध समवर्ती निष्कर्ष होने के बावजूद, ऐसे मामले में जहाँ विधि अपीलकर्ताओं के पक्ष में झुकाव रखती है, परिस्थितियाँ औचित्य सिद्ध करती हैं कि न्यायालय को सुधारात्मक अधिकार-क्षेत्र का प्रयोग करना होगा। अतः हरियाणा राज्य औद्योगिक विकास निगम बनाम कॉर्क मैन्युफैक्चरिंग कंपनी. से मार्गदर्शन लेते हुए, इस मामले में अनुच्छेद 136 के अंतर्गत असाधारण अधिकार-क्षेत्र का प्रयोग उपयुक्त पाया गया।

---

17 (1991) 3 एससीसी 136, पैरा 5 | (2017) 3 एससीसी 740, पैरा 35

18 (2007) 2 एससीसी 230, पैरा 29

19 (2021) 3 एससीसी 401

20 (2007) 8 एससीसी 120

34. तदनुसार कार्यवाही करते हुए, सर्वे नं. 1829 एवं 1838 में स्थित, रनबीरपोरा, अनंतनाग की 11 कनाल 15 मरला भूमि के संबंध में उत्तरदाता (वादी) के पक्ष में पारित डिक्री निरस्त की जाती है। अपील स्वीकार की जाती है और पक्षकारों को अपने-अपने व्यय वहन करने के लिए छोड़ दिया जाता है।

अंकित ज्ञान अपील स्वीकृत

सहायक: आर्ष चौधरी, एलसीआरए

यह अनुवाद पियूष आनंद, पैनल अनुवादक द्वारा किया गया है|